# अध्याय-प्रथम

# शोध परिचय

# अध्याय – प्रथम

## शोध परिचय

### 1.1 भूमिका –

हमारे देश में आदि काल से यह प्रसिद्ध रहा है कि पशु और मनुष्य में आहार, निद्रा, भय, भोग आदि की विशेषताएँ समान रूप से पाई जाती है, लेकिन शिक्षा और ज्ञान ही एक ऐसी विशेषता है जो मनुष्य को मनुष्य बनाए हुए है। अस्तु स्पष्ट है कि मानव जीवन की सार्थकता के लिए शिक्षा अन्यंत आवश्यक है।

**काका साहब कालेलकर** अपनी अलंकारित गुजराती भाषा में शिक्षा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं–

"शिक्षा कहती है, कि विज्ञान नहीं, सत्ता की दासी नही, किसी शास्त्र की गुलाम नहीं अपितु मैं मानव के हृदय, बुद्धि और अन्य समग्र शक्तियों की स्वामिनी हूँ। मानवशास्त्र और समाजशास्त्र मेरे दो चरण है कला और हुनर मेरे हाथ हैं। विज्ञान मेरा मस्तिष्क है, धर्म मेरा हृदय है, निरीक्षण व तर्क मेरे चक्षु है, इतिहास मेरे कान है, आजादी मेरा श्वास है, उत्साह, व उद्योग मेरे फेफड़े है, धैर्य मेरा व्रत है, श्रद्धा मेरी पूंजी है। मैं समग्र कामनाएँ पूर्ण करने वाली जगदम्बा हूँ। सच्चे अर्थ में शिक्षा जगदम्बा हूँ।"

इस प्रकार शिक्षा हमें सबके जीवन का अनिवार्य अंश है। शिक्षा का महत्व दिनों दिन बढ़ता ही चला जा रहा है। शिक्षा शब्द संस्कृत के 'शिक्ष' धातु से बना है। शिक्षा का अर्थ है–सीखना। सीखने की प्रक्रिया शिशु के जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। शिक्षा आजीवन चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक एवम्

आध्यात्मिक आदि विकास संपर्क रीति से होता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने आपको वातावरण से अनुकूल करके जीवन को सफल बनाता है और अपने व्यवहार में परिवर्तन तथा परिवर्धन लाता है। जिससे व्यक्ति, जाति, राष्ट्र तथा विश्व सभी का हित होता है।

शिक्षा का उपरोक्त अर्थ इस और संकेत करता है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का वैयक्तिक और सामाजिक विकास करना है, परंतु आज शिक्षा के ये समस्त उद्देश्य केवल सिद्धांत बनकर रह जाए ऐसी स्थिति का निर्माण हो रहा है। व्यवहार में इनकी पूर्ति दिन-ब-दिन कम होती जा रही है। यही एक प्रश्न अपने आप आ उपस्थित होता है कि यह सब क्यों हैं? निश्चय ही इसके कई कारण हो सकते है कि यह सब क्यों है? इन कारणों में राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, तथा विद्यालयी संबंधी. भी हो सकते है। विद्यालयी संबंधी कारणों में शिक्षक भी अपने आप आ जाता हैं।

एड्म्स महोदय का भी विचार है कि शिक्षा मे दों धुरी होती है-एक ओर शिक्षार्थी और दूसरी ओर शिक्षक। बालक के व्यक्तित्व विकास में गुरू का महत्व सार्वकालिक हैं, प्राचीन भारतीय संस्कृत में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समकक्ष माना गया हैं।

प्राचीन समय में शिक्षक ही शिक्षण का सर्वेसर्वा माना जाता था और उसी के अनुसार शिक्षा का स्वरूप निर्धारित होता था, किन्तु शिक्षा मनोविज्ञान के प्रभाव से आज ऐसा नहीं है, फिर भी विधि का ज्ञाता शिक्षार्थी नहीं अब भी शिक्षक ही माना जाता है। शिक्षक अपने शिक्षार्थियों को उत्तम विधियों द्वारा पाठ्क्रम को

हृदयंगम कराते हुए उन्हें लक्ष्य तक पहुंचाने में पथ-प्रदर्शक एवम् सहायक होता है।

किसी भी राष्ट्र या देश की शिक्षा प्रणाली में सबसे महत्वपूर्ण स्थान शिक्षक का होता है। हमारे समाज में भी आरंभ से लेकर आज तक शिक्षक का स्थान प्रमुख रहा है और वह ही राष्ट्र और समाज को विकास की ओर अग्रेसर करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। शिक्षक पर ही समाज की उन्नति निर्भर होती है। भवन निर्माण मे जो स्थान ईटों का है, राष्ट्र निर्माण में वही स्थान शिक्षक का हैं, क्योंकि विद्यालय की उन्नति या विकास के लिए उचित पाठ्यक्रम, श्रेष्ठ पाठ्यपुस्तकें उच्चतम शैक्षणिक सामग्री एवम् अद्यतन शैक्षणिक उपकरण तथा उपयुक्त विद्या-भवनों की आवश्यकता तो है ही, लेकिन उससे कही ज्यादा आवश्यक है एक योग्य, उपयुक्त शिक्षक। वह इसीलिए कि वो ही समस्त शिक्षा पद्धति को क्रियान्वित करते हैं।

अच्छे एवम् कर्तव्यपरायण शिक्षकों के अभाव में किसी भी देश की शिक्षा पद्धति निर्जीव एवम् निःस्तेज हो जाती है। इसी तथ्य को समझकर प्राचीन शासनकाल में अध्यापकों का एक विशिष्ट स्थान रहता था, लेकिन ब्रिटिश शासनकाल मे शिक्षकों की स्थिति सोचनीय हो गयी थी। इसीलिये स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार द्वारा नियुक्त राधाकृष्णन आयोग- (1948-49), मुद्धालियार आयोग (1952-53), कोठारी आयोग- (1964-66) इन सभी आयोगो ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षकों की आर्थिक, सामाजिक और व्यावसायिक दशाओं को सुधारे बिना शिक्षक का उत्तरदायित्व अपूर्ण ही रहेगा। देश के सारे शिक्षाशास्त्री, विद्वान, राजनीतिज्ञ और प्रशासक यह स्वीकार करते है कि देश

जिस संकटकालिन दौर से गुजर रहा है उसमें एक शिक्षक ही उसे सम्बल प्रदान कर सकता है।

**'आचार्य कौटिल्य'** के शिक्षक के बारे में कहे गये शब्दों से ही शिक्षक के स्वरूप का पता लग जाता है।

'शिक्षक कभी भी साधारण नहीं होता,
प्रारब्ध और प्रलय उसकी गोद में पलते है।'

शिक्षक के लिए यह कहना सार्थक होगा कि वह समाज का शिल्पी होता है, राष्ट्र विकास की धुरी होता है, देश के भावी कर्णधार और उनके भविष्य का निर्माता होता है। वही समाज या राष्ट्र के मूल्यों को सगुण बनाए रखने हेतु प्रयासरत् रहता है। वही समाज का सेवक भी है। जो समाज की धड़कन को पहचान कर उसे नया जीवनदान देता है। नित्य नवीन प्रेरणा भी प्रदान करता है। शिक्षक में ऐसी अनूठी एवं अलौकिक शक्ति है, जिसके बल पर वह छात्रों में शीर्षस्थ सद्गुणों का बीजारोपण कर उसका प्रारब्ध तक बदल सकता है।

बालक के सर्वांगीण विकास में शिक्षक का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षक ही समग्र विद्यालयीन योजनाओं को संपूर्ण व्यावहारिक रूप प्रदान करता है। जिस प्रकार विद्यालय जीवन में प्रधानाध्यापक मस्तिष्क के रूप में होता है, उसी प्रकार शिक्षक आत्मा स्वरूप होता है। आत्मा बिना शरीर (विद्यालय) निर्जीव होता है। शिक्षक ही विद्यालय जीवन का गति दाता है। विद्यालय जीवन में शिक्षक का महत्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट हो जाता है।

भविष्य निर्माता–

**रवीन्द्रनाथ टैगोर** के अनुसार 'अध्यापक वह प्रकाश पूंज है जो स्वयं जलकर औरों को भी प्रकाश प्रदान करता है।'

**प्रो. हुमायु कबीर** ने लिखा है 'शिक्षक राष्ट्र के भाग्य निर्णायक होते है। वे ही पुनः निर्माण की पुंजी है।'

**डॉ. जाकिर हुसैन** के अनुसार 'वास्तव में शिक्षक हमारे भाग्य निर्माता है, समाज अपने विनाश पर ही उनकी उपेक्षा कर सकता है।'

**राष्ट्र का मार्गदर्शक–**

**डॉ. राधाकृष्णन** के अनुसार 'समाज में अध्यापक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराएँ और तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है और सभ्यता के विकास को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है, वह सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षण तथा परिमार्जनकर्ता है। वह बालक का ही मार्गदर्शक नहीं वरन् संपूर्ण राष्ट्र का मार्गदर्शक है।'

**राष्ट्र की उन्नति में स्थान–**

**जोन डी.वी.** के अनुसार ''शिक्षक सदैव देवता का पैगम्बर होता है। समाज सुधारक एवं समाज सेवा के रूप में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। वह विद्यालय में ऐसा सामाजिक वातावरण निर्मित करता है, मित्र व पथ प्रदर्शक के रूप में वह ऐसे अवसर प्रदान करता है, जिससे छात्र, भाषा, धर्म, रंग, संप्रदाय, जाति, अवस्थाएँ और अन्य संकीर्णताओं से ऊपर उठकर सही अर्थ में शिक्षा के मुख्य लक्ष्य 'व्यक्ति को इन्सान बनाना' की प्राप्ति हेतु सक्रिय हो।''

अध्यापक का राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्र की प्रगति का मूलाधार आनेवाली नई पीढ़ी है। इसीलिए उन बालकों के सर्वांगीण विकास में शिक्षक को बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी पड़ती हैं। वास्तव में बालक का समुचित,

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं सांवेगिक विकास में शिक्षक का परिश्रम सम्मानीय हैं। संपूर्ण विद्यालयी योजनाओं को वही व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करता है। शिक्षक को अपने परमकर्तव्य के प्रति ईमानदारी ही ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करती है जो राष्ट्र की प्रगति के आधार बन सकें।

**संस्कृति का पोषक–**

गारफोर्थ के अनुसार 'शिक्षक के माध्यम से ही संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है। समाज की परम्पराएँ नवयुवको को ज्ञात होती है तथा वह नई एवं रचनामक उतदायित्वपूर्ण ऊर्जाएँ छात्रों को सौंपता हैं।'

**शिक्षा का रक्षक–**

शिक्षक संस्कृति का परिमार्जक एवं रक्षक है। समाज में प्रचलित शिक्षा का रक्षक भी शिक्षक ही होता है। वास्तव में शिक्षा की गुणात्मक स्थिति शिक्षकों की स्थिति तथा उनके गुणात्मक पहलु पर निर्भर हैं। शिक्षक अपने सद्प्रयासों से बालक का सफल मार्गदर्शन कर उसके अस्तित्व का संतुलित विकास कर उसे सफल नागरिक बनाता है। इस रूप में वह न केवल बालक का कल्याण करता है वरन् समुचे समाज तथा राष्ट्र की भलाई करता है इसीलिए तो भारतीय दर्शन में उसे ब्रह्मा का रूप दिया गया हैं। यह ब्रह्मा स्वरूप शिक्षक सृजनात्मक तथा विध्वंसात्मक शक्तियों का प्रदाता तथा स्त्रोत है। इसी की प्रदत्त शिक्षा के आधार पर हम कल्याणकारी तथा विनाशकारी शक्तियों का निर्माण करते है। इसीलिए कहा जाता है कि यदि विनाश पर आ जाये तो शिक्षक एक चिकित्सक, भवन निर्माता तथा पूजारी से भी अधिक विनाश कर सकता है।

आज अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के माहौल में राष्ट्र की धर्मनिरपेक्षता, प्रजातान्त्रिक गणराज्य की विशेषताओं को बनाए रखने के लिए देशभक्त नागरिकों की आवश्यकता है और ऐसे नागरिकों को तैयार करने का कार्य शिक्षक के अलावा अन्य कोई व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है। शिक्षक ही इस पुनीत कार्य को कक्षा के अंदर या बाहर दोनों तरह से कर सकता है। वह न केवल कक्षा के वातावरण को संशोधित या परिमार्जित करता है वरन् संपूर्ण विद्यालयी वातावरण को संवर्धित करने के लिए प्रयासरत् रहता है।

भले ही आज की विषम परिस्थितियों तथा दावाग्नि की तरह फैलते उपभोक्तावाद ने शिक्षक को भी व्यावासायिक बनने को बाध्य किया है, किन्तु बालक के विकास में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी, है और रहेंगी।

राष्ट्र और समाज वर्तमान स्थिति में जिस तीव्रगति से परिवर्तित हो रहा है। उससे विद्यालय भी अछूते नहीं रह सकतें। आज के बदलते हुए युग में समय के साथ कदम मिलाने के लिए बालकों को तत्कालिन समय के आधार पर शिक्षा देना अनिवार्य हो गया है और वह काम सिर्फ शिक्षक ही करता है, जो भविष्य की आवश्कताओं की पूर्ति के लिए वह वर्तमान की रचना करता है।

## 1.2 शिक्षक और अध्यापन व्यवसाय–

शिक्षा में शिक्षक एवं अध्यापन व्यवसाय एक सिक्के के दो पहलू हैं। जिनको अलग करना असंभव है। अध्यापन का अर्थ होता है– छात्रों को कुछ विशिष्ट विषयों का ज्ञान प्रदान करना। शिक्षा में वस्तुतः हम इस ज्ञान को सम्मिलित कर लेते हैं, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। शिक्षा एक त्रिध्रुवी प्रकिया है; उसके मुख्य तीन

घटक होते हैं - शिक्षक-पाठ्यक्रम-छात्र। शिक्षा में शैक्षिक क्रियाएँ जो छात्रों और अध्यापकों के अनुभव विश्व तथा व्यक्तित्व घटको से संबंधित होती है। शिक्षा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने के लिए अद्‌भूत भूमिका निर्वाह करती है। अध्यापकों को सदा केवल विषयों के अध्यापन तक ही सीमित न रहकर बालकों के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

शिक्षक राष्ट्र का हितैषी है, छात्रों के उन्नयन के लिए प्रयत्नशील भी रहता है। बस आवश्यकता है तो छात्रों से प्रेम करने की, उनके साथ समय बिताने की, छात्रों के साथ कार्य करने की, आवश्यकतानुसार समस्या समाधान करने की, स्वयं के चरित्र से छात्रों के चरित्र को उबारने की। जब तक्षशिला का एक गुरू सैनिक को राजा बना सकता है, संपूर्ण देश को धन सपन्न बना सकता है तो शिक्षक भावी पीढ़ी के उत्थान और राष्ट्र निर्माण के लिए चाणक्य की सी शक्ति को क्यों नहीं धारण कर सकते हैं?

**चाणक्य** ने भी कहा है कि शिक्षक असाधारण है, प्रलय और निर्माण उसकी गोद में पलते हैं।

शिक्षक का कार्य निष्पादन शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण निवेश है। शिक्षकों की चयन विधि, भर्ती, गुणवत्ता की दृष्टि से समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हो रही है। शिक्षक से बड़ी आशा लगाई जाती है, तथापि नौकरी की दृष्टि से शिक्षा का व्यवसाय अंतिम विकल्प माना जाता हैं। इसीलिए हमारी विसंगति यह है कि हमारे पास श्रेष्ठ ग्रंथ एवं अनुसंधान तो उपलब्ध है परन्तु शिक्षक उदासीन है।

ऊपर के कथन को पूरे शिक्षक वर्ग की बुराई न समझ लिया जाए इसीलिए यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वर्तमान परिस्थिति में जो भी गुणवत्ता दिखाई देती है वह वास्तव में ऐसे बहुत से शिक्षकों की प्रतिबद्धता, परिश्रम तथा नवत्रवर्तन की क्षमता के कारण ही है जो अपने शिष्यों के कल्याण के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध है। इसीलिए किसी भी राष्ट्र का हित उस राष्ट्र के अध्यापक के हित पर निर्भर है। एक अध्यापक अपने जीवन काल में हजारों विद्यार्थियों को शिक्षित करता है अतः अध्यापक अपने और हमारे भविष्य का सरंक्षक है और इसीलिए अध्यापक की ओर ध्यान देना अपने भविष्य की ओर ध्यान देना है। विशेष रूप से प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के ऊपर, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक शिक्षा प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। वह पहली सीढ़ी है, जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ संबंध प्राथमिक शिक्षा का है उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। इसका संबंध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश की पूरी जनसंख्या से होता है। जीवन की आधार शिला वास्तव में प्राथमिक शिक्षा से ही रखी जाती है। इस अवधि में बच्चों के मस्तिष्क में संवेदनशीलता बढ़ती है और उनका पूर्ण रूप से विकास होता है। उनमे जो आदते एवं सामाजिक विश्वास इस अवधि में पैदा किया जाता है वह संपूर्ण जीवन में बना रहता है।

यह निर्विवाद है कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान को जितनी भी बातें प्रभावित करती है उनमें शिक्षकों के गुण, उनकी क्षमता और उनका चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अतः आवश्यक है कि योग्यता वाले अध्यापक हों,

उन्हें सर्वोत्तम व्यावसायिक साधन उपलब्ध कराये जाये और ऐसी संतोषप्रद स्थितियाँ बनायी जाये जिनमें वे प्रभावी ढ़ंग से कार्य कर सकें।

हमारा विश्वास है कि जब तक अध्यापन कार्य अपना दर्जा नहीं बना लेता, जो कि व्यक्ति और कार्य के प्रकार दोनों में प्रतिबिंबित हो तब तक वह अपनी आर्थिक, सामाजिक स्थिति सुदृढ़ नहीं बना सकता हैं। हमें इस तथ्य का सामना करना होगा कि अध्यापन और शिक्षाविद् ही मुख्यतः अध्यापन के व्यावसायिक स्तर के लिए जिम्मेदार हैं।

## 1.3 शिक्षक और उनका अध्ययन कार्य–

शिक्षा मानव समाज में समय–समय पर विकसित रूप से परिवर्तन की पुष्टि करती रहती है। इसके कारण ही राष्ट्र और समाज आदिकाल, मध्यकाल और आज आधुनिक काल मे हमें स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देता है। जिस तरह शिक्षक अध्यापन के द्वारा विशिष्ट विषयों का ज्ञान प्रदान करता है उसी तरह शिक्षक का अध्ययन एक अच्छे अध्यापन का निर्माण करके नये ज्ञान का संचार करता है इसीलिए एक अच्छे अंध्यापन के लिए शिक्षक का अध्ययनरत् होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बन जाता है। जिस तरह शिक्षा त्रिध्रुवी प्रकिया है उसी तरह अध्ययन बहुध्रुवीय प्रकिया हो जाती है।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यही कारण से अध्यापकों को सर्वोत्तम व्यवसाय की संज्ञा दी गई है।

**कोठारी कमीशन** ने अपने रिपोर्ट का आरंभ इस कथन से किया– 'भारत के भाग्य का निर्माण देश के कक्षा–कक्ष मे किया

जाता है।' किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था का मूल आधार शिक्षक है। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु अनेंक प्रयास किये जा रहें हैं। जिनमें अध्यापक वर्ग को प्रशिक्षण देना इस संबंध में महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। शिक्षकों का अध्ययन से तात्पर्य विभिन्न विधाओं और प्रविधियों के विकास से है जिनमें कोई अपने सामान्य और विशिष्ट ज्ञान को इस तरह प्रयुक्त करने मे सक्षम हो जाता है कि वह लोक सेवा में उसका सफलतापूर्वक उपयोग कर सकते है। अतः बौद्धिकता का सामान्य शिक्षा से, विशिष्ठता विशेष शिक्षा से और प्रशिक्षण उपयोग की पद्धति से संबंधित है।

प्रारंभिक शिक्षा में गुणवत्ता स्थापित करने के लिए शिक्षक और बच्चों के उपलब्धि स्तर को उन्नत करने के उद्देश्य से शिक्षक को सेवाकालीन जो प्रशिक्षण दिया जाता है। जिसके आधार पर शिक्षक स्वयं अध्ययनरत् होकर अपने ज्ञान की वृद्धि करे और उनका अध्यापन कार्य प्रभावशाली हो, जिससे शिक्षा के जो उद्देश्यों की रचना हुई है उसी की पूर्ति हो सकें।

आज शिक्षा में सतत् परिवर्तन हो रहे हैं, जिसमें बदलते समय के आधार पर पाठ्यक्रम, शिक्षा–विधियों, योजनाओं और शिक्षा का स्वरूप आदि अछूते नहीं है। इसीलिए वर्तमान समय की नवीनता को ध्यान में रखकर शिक्षा के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का ज्ञान शिक्षक में होना आवश्यक ही नहीं पर अनिवार्य बन जाता है। परिवर्तित समय की माँग को ध्यान में रखकर शिक्षक ही पहले नये ज्ञान का अर्जन करता है और वह बच्चों में अपने ज्ञान का संचार करके राष्ट्र एवं समाज को उन्नत एवं प्रगति की और ले जाने में अपना अमूल्य योगदान देता है।

## 1.4 समस्या कथन–

आज के वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा के विस्तार के कारण अच्छे शिक्षक मिलना कठिन हो गया है। आज कोई भी व्यक्ति अपने बच्चों को डॉक्टर या इंजीनियर ही बनाना चाहता है। अच्छे शिक्षक के प्रशिक्षण की आवश्यकता उपस्थिति हुई है। सिर्फ शिक्षकों की ज्यादा तादात बढ़ाने से कोई फायदा नहीं है, बल्कि उनकी गुणवत्ता में सुधार लाना आवश्यक हैं। किसी कार्य की सफलता के लिए कार्य के प्रति संतुष्टि होना आवश्यक है। आज जबकि सरकार ने भी 14 साल तक के बच्चों के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का उपबंध किया है, ऐसे में शिक्षकों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। सीमित संसाधन होने पर भी देश के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ पाना तभी संभव हो पाएगा, जबकि सभी शिक्षक अपने व्यवसाय से संतुष्टि की अनुभूति करते हों, तथा उनमें अपने व्यवसाय के प्रति वचनबद्धता एवं समर्पण का भाव हों। अगर शिक्षक अपने व्यवसाय से संपूर्ण संतुष्ट होगें तो उसके कारण शिक्षकों का कार्य बहुत ही आसान हो जाता है।

शिक्षक शिक्षा के व्यवसाय में एक उच्च आदर्शो के साथ प्रवेश करता है। वह सादा जीवन, उच्च विचारों को ध्यान में रखकर समाज सेवा में लग जाता है, किन्तु कभी–कभी कई विषम परिस्थितियों से शिक्षक अपने व्यवसाय के प्रति ईमानदारी नहीं रख पाता। वह अपनी कर्तव्यपरायणता को भूल जाता है। उसे अपने इस व्यवसाय के प्रति अरूचि एवं नफरत–सी हो जाती है और उसमें असंतुष्टि की भावना पैदा होती है। शिक्षक में अपने व्यवसाय के प्रति असंतुष्टि पैदा करने वाले कई कारणों में

सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौतिक और राजनैतिक आदि है। इससे शिक्षक व्यवसाय से जूड़ा तो रहता है, लेकिन वह अपने व्यवसाय को न्याय नहीं दे पाता, क्योंकि उसमें असंतुष्टि का अंकुर निकला होता है।

शिक्षक वर्तमान में रहता है, लेकिन भविष्य का निर्माण करता है। इसीलिए उसे अपने कर्तव्य में नाविन्यता का संचार करना पड़ता है। वह तब ही अपने कार्य में नवीनता ला सकता है, जब वही परिवर्तित समय की नवीन शिक्षण विधियों का ज्ञानार्जन करता हो, स्वयं अध्ययन करता हो। वह अपने आपको नये ज्ञान से पूर्ण जब तक नहीं करेगा तब तक शिक्षा के उद्देश्यों का फलिभूत होना संभव नहीं होगा।

शिक्षक का स्वंय का बहुमुखी अध्ययन होगा तब उसका अध्यापन प्रभावशाली होगा और इसीलिए अपनी सकारात्मक कार्य संतुष्टि ओर अध्ययन की जिज्ञासा होना ही सर्व उद्देश्यों की पूर्ति है।

वर्तमान स्थिति को नजर समक्ष रखकर देखा जाय तो प्रगति के पथ पर चलने और भविष्य की आनेवाली बाधाओं को दूर करके नवनिर्माण के लिए शिक्षक की स्थिति को समझना आवश्यक हो जाता है। अगर हमने शिक्षक की स्थिति को सुधार या परिवर्तन से नजर-अंदाज कर दिया गया तो भविष्य के अनचाहे संकटों को हम सहने के लिए सक्षम नहीं बन पायेंगे और राष्ट्र तथा समाज की स्थिति सुधरने की बजह गिरने लगेगी। इसीलिए हमारे लिए जरूरी होता है कि शिक्षक को समझा जाय, उसकी स्थिति को पहचाना जाए और उसके आधार पर उसमें सुधार एवं परिवर्तन लाया जाए। इसी उद्देश्य को सामने रखकर इस लघुशोध

का शीर्षक–"प्राथमिक शाला के शिक्षकों व्यावसायिक संतुष्टि का उनके अध्ययन-अध्यापन पर प्रभाव– एक अध्ययन" रखा गया है।

## 1.5 प्रस्तुत शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व–

शिक्षा प्रक्रिया की श्रृंखला में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। अध्यापक को शिक्षा रूपी मशीन का 'फ्लाईव्हील' कहा गया है। वही अपने बालक की योग्यता, रूचि एवं आयु के अनुकूल उसके लक्ष्य को निर्धारित करके उसकी प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करता है तथा उस पाठ्यक्रम को उत्तम विधियों से बालक को हृदयंगम कराकर उसके निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायता देता है।

शासकीय स्तर पर शिक्षा चाहे कितनी ही मनोहर योजना बना ली जाये, किन्तु अध्यापक यदि उसे ठीक ढ़ंग से कार्यान्वित न करें तो वह योजना कदापि सफल नहीं हो सकती। प्राथमिक स्तर पर विशेष ध्यान रखते हुए बालकों में शिक्षा का संस्कार बोने की जिम्मेदारी अध्यापक पर ही होती है। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का दायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि उनका संबंध उन सुकोमल बालकों से है जिस पर संपूर्ण शिक्षा की नींव रखी जाती है। छात्रों के सामने अध्यापक एक आदर्श होता है। अध्यापक ही शिक्षा का आधार स्तंभ हैं, शिक्षा के हर कार्य में वह नेतृत्व करता है। इसी प्रकार अध्यापक को समाज का नेतृत्व करने वाला समाज रचयिता कहा जाता है।

प्रायः प्राथमिक विद्यालयों में देखा गया है कि जो अध्यापक कार्यरत् हैं उनमें से कुछ इस प्रकार के है जो किसी अन्य क्षेत्र में नौकरी न पाने के कारण इस व्यवसाय में लगे हुए

है एवं शिक्षण कार्य केवल इसी दृष्टि से कर रहे कि वे इसके लिए पैसा पाते है। उन्हें छात्रों की उन्नति एवं अवनति से कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। कुछ ऐसे भी अध्यापक है जो केवल इसीलिए इस व्यवसाय में लगे है कि वह अपने घरेलू व्यवसाय की देख-रेख भी कर सकते है। कुछ ऐसे भी अध्यापक हैं जो आयु से अधिक हो गए है जिस कारण अन्य कोई व्यवसाय न मिलने के कारण मजदूरी समझकर इस व्यवसाय में रह रहे है। इन सभी बातों से यही तथ्य निकलता है कि शिक्षण व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं। यदि उनकी आवश्यकता की पूर्ति उक्त व्यवसाय से होती है तो निश्चित् ही वे अपने व्यवसाय के प्रति संतुष्टि की अनुभूति करेंगे और उससे उनका अध्ययन-अध्यापन भी प्रभावी रूप से दिखाई देगा।

मानव समाज में शिक्षक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। संपूर्ण मानव जाति की उन्नति के लिए शिक्षक गण आदि काल से ही प्रयत्न करते आये हैं और मानव उत्थान के पुनीत कार्य में अपना जीवन अर्पित करते रहे हैं। मनुष्य अपनी वर्तमान उन्नत अवस्था एवं सभ्यता के लिए बहुत अंशों तक उन अध्यापकों का ऋणी है जो समय-समय पर अपनी शिक्षा तथा जीवन के आदर्शो से उसे पोषित करते रहे हैं। जीवन के लक्ष्य एवं उद्देश्यों की प्राप्ति में उनका नेतृत्व मनुष्य को सफलता पूर्वक अग्रेसर करता रहा है। उसे उन्हीं से स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती आई है। इस दृष्टि से मनुष्य अपने शिक्षकों का चिर ऋणी रहेंगा।

महान् दार्शनिक एवं विचारक **'अरविन्द घोष'** ने भी शिक्षक के बारे में कहा हैं- ''अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति का चतुर माली

होता है जो संस्कारों की जड़ों में अपने ज्ञान की खाद देते हैं और अपने श्रम से सींच-सींच कर उन्हें महाप्राण शक्तियाँ बना देते हैं।''

जैसे एक कुशल बागबान पौधों के विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करता है, वैसे विद्यालयों में अध्यापकों को बालकों के समुचित विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करना होता है, किन्तु यदि बागबान ही अपनी इस बागबानी से संतुष्ट नहीं होगा या इस कार्य की संतुष्ट नहीं रखेंगा और वह नये ज्ञान के अध्ययन से अपने कार्य में प्रभावी परिवर्तन नहीं लायेगा तो क्या वह पौधों के विकास में पूरा योगदान दे सकेगा ?

अध्यापक किसी भी, महान पुरूष की अपेक्षा बड़ा होता हैं, क्योंकि महानतम् व्यक्तियों को अध्यापक ही पढ़ाता है। उपरोक्त बातें हमें इस बात की ओर खींचती जा रही है कि शिक्षा कार्य में अध्यापक की भूमिका सर्वश्रेष्ठ है उसी पर सारे समाज व छात्रों का विश्वास है। हमारे देश को अगर अच्छा जीवन फिर से कोई प्रदान कर सकता है तो वह है अध्यापक, लेकिन वर्तमान स्थिति के अनुसार कोई भी माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षक बनाना नहीं चाहते, सभी को लगता है कि अपने बच्चे डॉक्टर, इंजीनियर बनें। जब सारे रास्ते बंद होते हैं तब वह शिक्षक का पेशा स्वीकार करते है। इसका भी अध्यापन पर प्रभाव पड़ता है और वे अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हो पातें।

किसी भी स्तर पर व्यक्ति को विवशता की स्थिति मानकर अध्यापक नहीं बनना चाहिए। इस व्यवसाय के प्रति तभी उन्मुख होना चाहिए जब अध्यापन के प्रति रूचि हो तथा इस कार्य को गौरवपूर्ण माना जाए। कुछ ऐसे भी अध्यापक देखने में आए हैं जो अवसर की तलाश में रहते हैं; जब वे किसी अन्य व्यवसाय को

अपना सकें। ऐसे व्यक्ति कभी भी निष्ठावान अध्यापक नहीं बन सकते और वे जीवन में कभी-कभी सुखी नहीं रह पाते हैं। हम जहाँ भी हैं अगर पूरी निष्ठा से काम करें तो हमें परम संतोष प्राप्त होता है।

किन्तु, अपने महान कार्य एवं दैवी शक्तियों के प्रयोग में ये अध्यापक तभी रुचिपूर्वक संलग्न हो सकते हैं, जबकि समाज उसके कार्य के अनुरूप आदर एवं प्रतिष्ठा प्रदान करेगा। आज का समाज उन्हें आधा पेट खाकर, आधा तन ढ़ककर जनतंत्र की सेवा में लगा रहने वाला नागरिक समझे हुए है। यह सही है कि शिक्षक विशेषकर प्राथमिक स्तर के एक अधिकार हीन परिवेश मे काम करते हैं। दिल्ली के टाऊन होल में बैठा लिपिक भी उन्हें. हिकारत भरी नजरों और भाव से देखता है। यह भी सही है कि उन्हें पर्याप्त पठन-पाठन की सामग्री मिलना तो दूर विद्यालय की ढ़ाँचेगत सुविधायें भी सुलभ नहीं हो पाती। इस सत्य को भी नकारना मुश्किल है कि बच्चों से अन्तःक्रिया करने व अध्यापन के कार्य को छोड़कर अधिकारी वर्ग द्वारा उनसे वे तमाम कार्य करवाए जाते हैं जिनका बच्चों की शिक्षा से कोई लेना देना नहीं। जिससे शिक्षक स्वयं भी अध्ययन करने के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पा रहे है और अध्यापन के कार्य को वह फिर न्याय नहीं दे सकते,, किन्तु हास्यास्पद बात है कि संपूर्ण समाज एवं राष्ट्र का निर्माणकर्ता जीवन के निम्नस्तर में पड़ा हुआ है फिर भी समाज उससे राष्ट्र निर्माण की आशा लगाए हुए है।

शिक्षकों के महत्व एवं वर्तमान समय में उनकी स्थिति को भली-भाँति समझ लेने के पश्चात यह पता लगाना अति आवश्यक है कि अध्यापक अपने अध्ययन कार्य के प्रति, अपने व्यवसाय के

प्रति संतुष्टि रखे हैं या नहीं और वह अपना अध्ययन कार्य प्रभावी रूप से करता है या नहीं तथा उसके अध्ययन के लिए पर्याप्त प्रयास एवं समय का उपयुक्त उपयोग करता है या नहीं। इस तथ्य का वैज्ञानिक रीति से पता लगाने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है। इसी हेतु यह अनुसंधान कार्य किया गया है।

वर्तमान समय में यह नितान्त आवश्यक है कि शिक्षा प्रदान करने के लिए ऐसे ही व्यक्ति नियुक्त किए जाए जो अपने प्राचीन आदर्शो पर चलकर अपने महत्व को यथावत् बनाये रखें। विशेषकर प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के चुनाव में और भी सतर्कता रखने की आवश्यकता है, क्योंकि इन शिक्षकों का बालक पर अमीट प्रभाव पड़ता है। भावि अध्यापकों को यह बात याद रखनी होगी कि अध्यापक बन जाना जितना सरल है अध्यापक बना रहना उतना ही कठिन हैं।

प्रस्तुत अनुसंधान का महत्व एवं शैक्षिक उपादायेता एक सफल शिक्षक के महत्व और उसकी शैक्षिक उपादेयता से संबंध रखती है। अध्यापक की सफलता एवं असफलता ही शिक्षा प्रक्रिया की सफलता एवं असफलता है, किन्तु शिक्षक की सफलता एवं असफलता के मानक क्या है? यह प्रश्न विवादास्पद हैं। क्या अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण शिक्षक ही सफल शिक्षक है या अच्छा परीक्षाफल लानेवाला शिक्षक ही सफल शिक्षक है, यदि निरपेक्ष ढ़ंग से देखा जाय तो शिक्षक की सफलता एवं असफलता के द्योतक उसके द्वारा शिक्षित छात्र हैं। यदि शिक्षित छात्रों का विकास हुआ है, छात्र अपनी सामाजिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में अपना समायोजन कर लेता है तो निश्चित् ही वह शिक्षक अपने स्थान पर पूर्ण सफल है। किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति तभी संभव है,

जबकि अध्यापन कार्य में लगे हुए व्यक्ति अपने व्यवसाय से पूर्णतया संतुष्ट है और स्वयं अच्छे अध्यापन के लिए अध्ययनरत् होंगे तथा इस व्यवसाय को महान कार्य के रूप में अपनायेंगे।

## 1.6 शोध में प्रयुक्त शब्दावली की परिभाषा–

### 1.6.1 प्राथमिक शाला के शिक्षक–

प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र गुजरात राज्य है। इसमे प्राथमिक विद्यालयों के अन्तर्गत एक से सातवीं कक्षा को स्थान दिया गया है। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक यानि कि जो स्थायी रूप से अध्यापन व्यवसाय से जूड़े है और पूर्ण वेतन प्राप्त कर रहें है, ऐसे अध्यापकों को ही अध्ययन में शामिल किया गया हैं।

### 1.6.2 व्यावसायिक संतुष्टि–

इसमें दो शब्द प्रयुक्त है– **व्यवसाय और संतुष्टि**। व्यवसाय से हमारा तात्पर्य किसी कार्य विशेष से हैं। व्यक्ति जिस कार्य में सलग्न रहकर अपने जिविकोपार्जन के लिए धन प्राप्त करता है वही उसका व्यवसाय हैं।

परम्परागत चार प्रमुख व्यवसायों– कानुन, शिक्षा, धर्म, और चिकित्सा में से **'शिक्षा'** को एक व्यवसाय के रूप में भी माना जाता हैं। इस व्यवसाय में मानव व्यक्तित्व के प्रति सम्मान को प्रदर्शित करना है। इसमें आचरण के नियंत्रण के लिए कुछ व्यवसायिक नैतिकता होनी आवश्यक है। जिसमें मानव अधिकारों के प्रति आस्था, अपने कार्य के प्रति ईमानदारी, विद्यालय एवं छात्रों के प्रति कर्तव्यपरायणता एवं प्रजातांत्रिक भावना और समुदाय के कल्याण के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों की वृद्धि करने की दृढ़ ईच्छा होनी चाहिए।

संतुष्टि एक सर्वव्यापक शब्द है जिसका अर्थ विवादास्पद है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार परित्याग ही संतोष हैं अर्थात ईच्छा रहित अवस्था ही संतोष की अवस्था है, परन्तु यह चरम स्थिति सामान्य व्यक्ति को प्राप्त नहीं है। समाज में विरले ही इस स्थिति को प्राप्त करते है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए चिंतन, मनन एवं त्याग की भावना की आवश्कता होती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम संतुष्टि का आवश्यकताओं के संबंध में ही अध्ययन करते हैं। मनुष्य की आवश्यकताओं का वर्गीकरण **'मेस्लो महोदय'** के अनुसार पाँच अवस्थाओं में किया गया हैं।

1. मूलभूत शारीरिक आवश्यकताएँ
2. आत्मानुभूति,
3. आत्म सम्मान की भावना,
4. सुरक्षा एवं बचाव
5. प्रेम एवं सामाजिकता।

हर व्यक्ति अपने व्यवसाय से इन आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है इसीलिए वह व्यवसाय से संलग्न रहकर परिश्रम एवं कार्य करता है। इन आवश्यकताओं की जब किसी व्यवसाय से पूर्ति होती है तो उसे व्यावसायिक संतोष कहा जाता है।

इस प्रकार हम देख सकते है कि संतुष्टि का दार्शनिक दृष्टिकोण अति व्यापक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तियों की मूल आवश्कताओं की पूर्ति यदि किसी व्यवसाय से होती है तो उससे संलग्न कर्मचारियों को व्यावसायिक संतोष होगा। यदि कर्मचारियों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उक्त व्यवसाय से नहीं

होती तो उससे संलग्न व्यक्तियों को व्यावसायिक संतोष नहीं होगा।

प्रस्तुत अनुसंधान में प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का उपरोक्त मनोवैज्ञानिक अर्थ विशेष रूप से स्वीकार किया जाता है। यहाँ एक बात ध्यान रखने योग्य है कि विकास एवं परिपक्वता के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ भी विस्तृत एवं परिवर्तित होती रहती है। इसीलिए व्यावसायिक संतुष्टि के लिए यह भी आवश्यक है कि विकास के अनुसार परिवर्तन एवं विस्तृत आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता भी व्यवसाय में सन्निहित हो।

### 1.6.3 अध्ययन-अध्यापन-

**इनसायक्लोपिड़िया-** "शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे एक व्यक्ति दूसरे को ज्ञान, कौशल तथा अभिरूचियों को सीखने या प्राप्त करने में सहायता करता है।"

**अध्ययन-**

शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया न रहकर अब बहुध्रुवीय प्रक्रिया मानी जाती है। त्रिध्रुवीय प्रक्रिया में शिक्षक, पाठ्यक्रम, छात्र का समावेश होता है, किन्तु परिवर्तित समय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा की विधियों, पाठ्यक्रम एवं संरचना में जो बदलाव आते है; उसी के लिए शिक्षक को नये ज्ञान को अर्जित करने के लिए सदा अध्ययनरत् होना पड़ता है।

**अध्ययन का अर्थ है** – नये ज्ञान को अर्जित करना। हम जानते है कि 'एक चिकित्सक जब चिकित्सालय में रोग का इलाज करने में तब तक सफल नहीं हो सकेंगा जब तक इस रोग के इलाज का उसे ज्ञान न हो।' इस तरह एक शिक्षक भी तब तक अपना अध्यापन कार्य प्रभावी एवं उद्देश्यपूर्ण नहीं बना सकेंगा जब

तक वह नयी शिक्षण–विधियों का अध्ययन न कर ले और उसका उपयोग अपने अध्यापन में न करता हो।

कहा जाता है कि 'शिक्षक स्वयं नहीं सीखता तो किसी को नहीं सीखा सकता' इसी का अर्थ है शिक्षक को स्वयं अध्ययनरत् रहकर नया ज्ञान अर्जित करके ही अध्यापन कार्य करवाना चाहिए।

**अध्यापन–**

शिक्षा में ज्ञान के आदान–प्रदान करने का माध्यम अध्यापन रहा है। शिक्षक कक्षा खंड़ों में अपने अर्जित ज्ञान को अपने परिश्रम एवं विविध शिक्षण विधियों द्वारा छात्रों को ज्ञान से परिपूर्ण करता है। अच्छा अध्यापन एक उत्तम शिक्षा–प्रक्रिया को उद्देश्य पूर्ण बनाता है।

शैक्षणिक संस्थानों में छात्रों को पढ़ाने या सीखाने की प्रक्रिया व्यापक रूप में चलती है। अध्यापन कार्य एक बुद्धिचातुर्य से किया गया कार्य होता है। शिक्षक को घीसी–पीटी पुरानी शिक्षा पद्धतियों का त्याग करके अध्यापन के लिए ऐसी स्थिति, दशा का निर्माण करना चाहिए, जिसमें छात्रों के क्रिया–कलापों को योग्य पृष्ठभूमि प्राप्त हो और शिक्षक के पढ़ाने के साथ–साथ छात्रों में स्व–अध्ययन की जिज्ञासा का विकास हों।

इस अनुसंधान में अध्ययन–अध्यापन का अर्थ शिक्षकों के स्वंय के अध्ययन में उनका सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्राप्त प्रशिक्षण के अध्ययन से संबंध रखा गया है और अध्यापन का अर्थ शिक्षण–विधियों एवं कक्षा–अध्यापन से संबंधित हैं। इसमें यह ज्ञात करना है कि शिक्षक अपना स्वंय का अध्ययन किन–किन स्त्रोतों और अध्यापन किन–किन विधियों के द्वारा करते है उसको अध्ययन हेतु इन शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

## 1.7 शोध में प्रयुक्त चर–

- **स्वतंत्र चर** : व्यावसायिक संतुष्टि
- **आश्रित चर** : अध्ययन–अध्यापन पर प्रभाव
- **उपचर** : लिंग – स्त्री/ पुरुष
  क्षेत्र – ग्रामीण/ शहरी
  योग्यता –पी.टी.सी./बुनियादी शिक्षण
  प्रवीण/ स्नातक

## 1.8 शोध के उद्देश्य–

1. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि स्तर का अध्ययन करना।
2. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि स्तर का उनके अध्ययन–अध्यापन पर पड़नेवाले प्रभाव का अध्ययन।
3. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की क्षेत्र के आधार पर व्यावसायिक संतुष्टि का उनके अध्ययन–अध्यापन पर प्रभाव का अध्ययन।
4. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की लिंग के आधार पर व्यावसायिक संतुष्टि का उनके अध्ययन–अध्याप्रन पर प्रभाव का अध्ययन।
5. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की योग्यता के आधार पर व्यावसायिक संतुष्टि का उनके अध्ययन–अध्यापन पर प्रभाव का अध्ययन।

## 1.9 अनुसंधान की परिकल्पनाएँ–

1. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि एवं उनके अध्ययन–अध्यापन पर प्रभाव के मध्य सार्थक संबंध नहीं होगा।
2. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की लिंग के आधार पर व्यावसायिक संतुष्टि और उनके अध्ययन–अध्यापन पर प्रभाव के मध्य सार्थक अंतर नहीं होगा।

3. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की क्षेत्र के आधार पर व्यावसायिक संतुष्टि और उनके अध्ययन-अध्यापन पर प्रभाव के मध्य सार्थक अंतर नहीं होगा।

4. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की योग्यता के आधार पर व्यावसायिक संतुष्टि और उनके अध्ययन-अध्यापन पर प्रभाव के मध्य सार्थक अंतर नहीं होगा।

5. प्राथमिक शाला के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि स्तर का विश्लेषण करना।

**1.10 समस्या का सीमांकन-**

1. अध्ययन हेतु गुजरात राज्य का साबरकांठा जिले को ही लिया गया है।

2. अध्ययन हेतु साबरकांठा जिले के तीन तहसील के शासकीय प्राथमिक विद्यालयों को ही लिया गया है।

3. अध्ययन हेतु तीन तहसील के चौबीस प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत् एक सौ बीस शिक्षकों को ही लिया गया है।

4. अध्ययन हेतु तीन तहसील में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शासकीय प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों को ही लिया गया है।

5. अध्ययन हेतु इसमे 'अध्ययन' शब्द का अर्थ सिर्फ शिक्षकों का 'सेवाकालिन प्रशिक्षण' में अध्ययन से लिया गया है।

6. अध्ययन हेतु शोध में शिक्षकों का अध्ययन-अध्यापन प्रभाव देखने के लिए शोधकर्ता की स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

7. अध्ययन हेतु शिक्षकों की योग्यता के अर्थ में उनकी प्राथमिक शिक्षक की योग्यता और इससे ज्यादा योग्यता वाले शिक्षकों का चयन किया है।